हिन्दी साहित्य की पूर्व पठिका: एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. धार्मिनीबहन के. जोशी

१. हिन्दी साहित्य की पूर्व पठिका

हिंदी भारत में सर्वाधिक बोले जाने वाली भारतीय आर्य भाषाओं में सर्वोपरि है। भारतवर्ष को प्राचीन काल में आर्यावर्त के नाम से जाना जाता था और यहाँ के नियासियों को आर्य तथा आर्या द्वारा बोले जाने वाली भाषाओं को आर्य भाषाओं के नाम से जाना जाता था। पृथ्वी के मानचित्र में भारत की स्थिति एक प्रायद्वीप के समान है। इसके उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय तथा सुदूर दक्षिण में अथाइ अपार सागर हिलोरें ले रहा है, जिसकी महान संस्कृति ने वैदिक संस्कार सदाचार एवं सुव्यवस्थित सुदृढ सामाजिक परम्पराओं को जन्म दिया है। सहिष्णुता भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा गुण है। जो समुद्र की भाँति अनेक नदियों की धाराओं को अपने अन्दर धारण करने की क्षमता रखती है। यहाँ अनेक जाति धर्म के लोगों ने आक्रमण किया किन्तु सब मिट गए और भारतीय संस्कृति आज भी अमिट है। यह संस्कृति हमारी परम्पराओं को नवजीवन प्रदान करती है, जिसके फलस्वरूप आज भी यह नवनूतन लगती है। यहाँ राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक सभी परिस्थितियों में उतार-चढ़ाव आए. किन्तु इसकी सहिष्णुता की नीति से यह सदैव विजयी रही है। हिन्दी साहित्य में भक्ति, वीर और शृंगार का त्रिवेणी संगम दृष्टिगोचर होता है। इसमें भक्ति की धारा के संग ओजस्वी शैली के रासो साहित्य तो कहीं महाकवि बिहारी की नायिका का अद्‌भुत शृंगार और कहीं घनानन्द के वियोग भरे कवित्त के साथ-साथा भूषण का राष्ट्रप्रेम उजागर होता है।

भारत की इस पावन भूमि में धर्म, संस्कृति और संस्कारों की अजस्र धारा प्रवाहित होती है, जो जनजीवन को अमृतमय जीवन प्रदान कर रही है। यहाँ के कवि लेखक स्वान्तःसुखाय के साथ-साथ परिजन हिताय साहित्य का सृजन करते हैं । कवियों में तुलसी, सूर जायसी और कबीर अपनी वाणी से जनसमूह को भक्ति और प्रेम की धाराओं से आनन्दित करते हैं तो भारतेन्दु प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद अपने साहित्य के द्वारा राष्ट्रप्रेम को अभिव्यक्त करते हैं । इस प्रकार के गौरवान्वित साहित्यकारों पर हम भारतीयों को गर्व है क्योंकि साहित्य को “सुरसरि सम सब कर डित होई " बताया जाता है ।

२. हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के “सिन्धु' शब्द से मानी जाती है । सिन्धु नदी के आस-पास का क्षेत्र सिन्धु प्रदेश कहलाता था । ईरान (फारस) की तरफ से भारत में आने वाले विदेशी आक्रमणकारी हिन्दुकुश पहाड़ी मार्ग को पार करके जब सिन्धु प्रदेश में आए तो उन्होंने सिन्धु प्रदेश को हिन्द प्रदेश कहा, क्योंकि ईरानी (फारस) भाषा में शब्द की प्रथम ‘स' ध्वनि को ह ध्वनि में उच्चारित करते हैं । अत. सिन्धु प्रदेश को हिन्दप्रदेश कहने लगे और वहाँ के निवासियों को सिन्धु के स्थान पर हिन्दु कहने लगे। यही सिन्धु की भाषा हिन्द कहलाने लगी और आगे चलकर ईरानी भाषा का ईक प्रत्यय लगर्न के कारण हिन्द + ईक -हिन्दीक बन गया जिसका अर्थ हिन्द का हुआ । यही शब्द धीरे-धीरे परिवर्तित होकर हिन्दीका हुआ जो अंग्रेजी भाषा के रूपान्तरण के कारण 'इण्डिया बन गया । आज यह "इण्डिया" समस्त भारतवर्ष का सूचक बन गया है।

३. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

मारतीय भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद है । ऋग्वेद की भाषा सस्कृत थी. किन्तु समयचक्र सदैव गतिमान होने के कारण परिवर्तनशील है । अतः माषा भी धीरे-धीरे अनेक रूपों में परिवर्तित होने लगी । संस्कृत भाषा का समय १५०० ईसा पूर्व से ५०० ईसा पूर्व का रहा । यह दो प्रकार की थी । पहली वैदिक संस्कृत जिसमें वेद. उपनिषद आरण्यक ब्राह्मण एवं दर्शन आदि की रचना हुई व दूसरी लौकिक संस्कृत जिसमें रामायण और महामारत इत्यादि की रचना हुई । यडी लौकिक संस्कृत बोलचाल की भाषा के रूप में विकसित हुई और धीरे-धीरे पाली भाषा के रूप में प्रचलित हुई । जिसका समय ५०० ईसा पूर्व से ईसा की पहली शताब्दी तक माना गया। इस भाषा में बौद्ध धर्म के विनयपिटक सूत्तपिटक अमिधाम्मपिटक एवं जातक कथाओं की रचना हुई किन्तु भाषा के दो रूप सदैव प्रचलित रहे । पहला रूप साहित्यिक दूसरा लौकिक अर्थात् बोलचाल की भाषा । लौकिक माषा में धीरे-धीरे साहित्यिक रचनाएँ होने लगती हैं । जब कोई नाषा कवि और लेखकों का आश्रय पाकर नवीन माषा में परिवर्तित हो जाती है तो साहित्यिक माषा का रूप धारण कर लेती है । पाली भाषा में भी ऐसा ही हुआ । वह समय के अनुसार प्राकृत का रूप धारण करने लगी । प्राकृत का समय ईसा की पहली शताब्दी से लेकर ५०० ईची के बाद तक रडा । इन्स काल में जैन साहित्य प्रचुर मात्रा में रचा गया । प्राकृत के समय जनपदों में क्षेत्रानुसार माषा का प्रचार हुआ । यहीं से प्राकृत भाषा अपनश के रूप में प्रसारित हुई । विद्वानों ने प्राकृत भाषा के अन्तिम चरण में अपभ्रश का उदभव माना है क्योंकि तत्कालीन प्रचलित शब्दों से यह पता चलता है कि प्राकृत के उत्तरार्द्ध में शब्दों में विकृति (बिगना) आना शुरू हो गया । जैसे गाथा शब्द गाड़ा और दोहा शब्द दूहा के रूप में परिवर्तित हो गए। अपभ्रश के समय देशी भाषायुक्त थोड़ी सरलता एवं मधुरता वाली भाषा का भी अभ्युदय हुआ उसे "अवहट्ट" माषा कहने लगे। मैथिल कोकिस विद्यापति ने इसी माणा में अपनी टो रचनाएँ लिखी। पहली “कीर्तिलता' और दूसरी "कीर्तिपताका' ये दोनों अवहट्ट की कृतियां हैं।

जैसे-

देसित बनना सब जन मिटा ।
ते तैसन जयहो अवहटवा ।।

अपभ्रश भाषा के विभिन्न होत्रीय रूपों एवं बोलियों से ही हिन्दी भाषा का उदय हुआ । अपघ्शनाणी कवियों एवं दार्शनिकों शिष्माचार्यों जैनाचार्या एवं नाथ समुदाय के अनुयायियों से डी अपमंश माषा का प्रचार एवं प्रसार हुआ । हर्षवर्द्धन के शासन काल के पश्चात् अपमंश का प्रचार तेज गति से बढ़ा । अत हिन्दी का प्रारम्भिक काल अपनश साहित्य में ही दिखाई दिया। इसी काल के चौरासी सिद्धों में हिन्दी का रूप निखर करके आया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी को ग्राम्य अपनंश का विकसित रूप माना है। तत्कालीन सिट्याचार्यों ने लोक भाषा में ही लिखना प्रारम्भ किया क्योंकि कोई कविता या काव्य रचना जनभाषा में लिखने से ही बहुश्रुत बनती है और ख्याति प्राप्त करती है । अपनश भाषा के हेमचन्द्राचार्य ने सबसे पहले अपनश भाषा का व्याकरण "शब्दानुशासन' लिखा. किन्तु हेमचन्दाचार्य से पूर्व ही सिद्धाचार्या ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर दी थी । अपनश भाषा का इतिहास बताता है कि हिन्दी अपनश के आँचल में पली बढ़ी। यही प्रारम्भिक हिन्दी की बुनियाद है। उदयनारायण तिवारी ने लिखा. आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् १३वीं शताब्दी के प्रारम्न में आधुनिक भारतीय भाषाओं के अभ्युदय के समय १५वीं शताब्दी के पूर्व तक का काल सक्रान्ति काल था। जिसमें भारतीय आर्य भाषाएँ धीरे-धीरे अपम्रश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थीं। मिनबंधुओं ने अपने "मित्रबंध विनोद" में हिन्दी साहित्य के अदिकाल की विवेचना करते हुए अपभ्रंश के साहित्य को प्रधान स्थान दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपम्रश और प्राकृत की अन्तिम अवधारणा से ही हिन्दी साहित्य का अविर्भाव माना। डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है.देश शारे-शीरे इतना बढ़ा कि १३वीं सदी तक आते-आते अपभ्रश के सहारे से ही पूर्व और पश्चिम के देशों ने अपनी बोलियों का स्वतंत्र रूप प्रकट कर लिया। इसके मौगोलिक परिप्रेक्ष्य को देखें तो लगता है हिन्दी का क्षेत्र दो भागों में बँट गया । प्रथम पश्चिमी हिन्दी और द्वितीय पूर्वी हिन्दी । अपनश का साहित्य हिन्दी के जन्म का कारण बना ।

हिन्दी साहित्य की परम्परा को देखें तो डॉ. नगेन्द्र के अनुसार अपभ्रश से ही क्षेत्रीय रूपों में परिवर्तित होने वाली बोलियों से हिन्दी का रूप विकसित हुआ है । अपयश अर्थात् शौरसेनी अपनश. पैशाची. बाचन महाराष्ट्री. मागधी और अर्धमागधी के रूपों में प्रसारित हो रही थी। इनकी उपभाषाएँ एवं मुख्य बोलियों से ही हिन्दी का उमव माना गया है। जिसका सामान्य परिचय इस प्रकार है। अपनश की क्षोत्रीय माषाएँ जिनसे हिन्दी का उद्भव हुआ -

१. शौरसेनी अपभ्रंश, २. मागही अपनंश और ३. अर्धमागधी अपनश

४. शौरसेनी अपभ्रश की उपमाषाएँ एवं बोलियाँ

उपभाषाएँ	बोलियाँ
1. पश्चिमी हिंदी	खडीबोली (कौरवी), ब्रजमाषा बुन्देली हरियाणवी (बांगरू), कन्नौजी
2. पूर्वी हिंदी	अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी
3. राजस्थानी	मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी
4. पहाड़ी	पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी, मैथिली, मगही, भोजपुरी

इस प्रकार हिंदी में पाँच उपमाषाएँ और अठारह बोलियों सम्मिलित है।

१. **साड़ीबोली**- पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में पहला स्थान खड़ी बोली का है । प्राचीन काल में हस्तिनापुर में कौरव वंश का शासन होने से इसको (कोरवी) भी कहते हैं। दिल्ली, गाजियाबाद, देहरादून, मुरादाबाद, सहारनपुर के आस पास के क्षेत्र में यह बहु प्रचलित बोली रही इसमें लोक नाटक कहानी. लोककाव्य व गीत अदि की रचनाएँ हुई । यह देवनागरी लिपि में लिखी जाने लगी। मध्यकाल में आते-आते इसमें अरबी, फारसी के शब्द में सम्मिलित हो गए और यह हिन्दुस्तानी के नाम से जानी गई । इसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली का बाहुल्य है। यह डेढ हिंदी की सबसे निकट की बोली है। वर्तमान में हिन्दी काव्य इस खड़ी बोली में ही लिखा जा रहा है।

२. **हरियाणवी-** हरियाणा प्रदेश की बोली होने के कारण इसे हरियाणवी कहते हैं । यह चंडीगढ़ के आस-पास पटियाला अम्बाला हिसार व रोहतक के क्षेत्र में बोली जाती है। कहीं-कहीं इस में पंजाबी भाषा का पुट भी आ गया क्योंकि यह पंजाब प्रान्त के निकट है । यहाँ के लोक साहित्य में यह बहुत प्रचलित है. इसे ग्रामीण क्षेत्र में बाँगरू के नाम से भी जाना जाता

३. **कन्नौजी-** कानपुर के आस-पास का क्षेत्र कन्नौज प्रदेश कहलाता है। इसका प्रभाव कानपुर पीलीभीत इटाया शाहजहाँपुर फर्रुखाबाट व हरदोई धोत्र में है । बज भाषा के शब्दों के समान शब्द एवं बोलने का लडज़ा होते कारण इसको ब्रज जैसी ही समझते हैं किन्तु यह ब्रज भाषा से मिन्न है । यहाँ कान्यकुब्जी ब्राह्मणों का बाहुल्य था। इसलिए इसे कन्नौजी भी कहते हैं।

४. **बजभाषा -** ब्रज मण्डल मथुरा वृन्दावन की प्रमुख बोली होने के कारण इसे ब्रज भाषा कहते हैं । शौरसेनी अपनश का मध्यवर्ती रूप इसमें झलकता है. क्योंकि शूरसेन प्रदेश की यह प्रमुख बोली रही है। ग्रज का दोव विस्तार विशाल है-आगरा, अलीगढ़ बरेली मथुरा एटा, मैनपुरी, घोलपुर व मरतपुर आदि इस क्षेत्र में आते है। हिन्दी जगत में ब्रज का साहित्य अधिक लोक प्रिय होने कारण यह लोगों में बडु प्रचलित है। सूरदास. नन्तदास. केशव बिहारी. घानानन्त. पदमाकर देव तथा अष्टछाप व अन्य कवियों की रचनाएँ इसी ब्रजभाषा से मंडित है। यह मन को मोहने वाली मीठी बोली होने के कारण जनप्रिय हो गई।

५. **बुन्देली-** बुन्देल राजाओं के बुन्देल खण्ड की बोली होने के कारण इसे बुन्देली कहते हैं। इसका प्रदेश ओरछा, झांसी, छतरपुर, सागर, ग्वालियर होशंगाबाद व हम्मीरपुर के आस पास का क्षेत्र है। बुन्देली में

लिखी गई "बाल्डा खण्ड" एक सुप्रसिद्ध रचना है । उसकी ओजस्वी शैली मन में जोश मर देती है । "आल्ला' की शब्दावली बुन्देली से काफी मिलती-जुलती है ।

६. **अवधी -** पूर्वी हिन्दी की बोलियों में सबसे पहला स्थान अवधी का है । यह अयोध्या के आस-पास की बोली है । अयोध्या का वर्तमान नाम अवधाप्रदेश है । तुलसी की रामचरितमानस' अवधी की प्रसिद्ध कृति है । इसका प्रसार अयोध्या, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, सीतापुर, फैजाबाद व बाराबंकी अदि क्षेत्रों है । तुलसी और जायसी इस माणा के प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं । सूफी कवियों की रचनाएँ अवधी में ही रची गई हैं। जैसे -मुल्लादाऊद की चन्द्रायन, कुतबन की मृगावती, मंझन की मधुमालती व जायसी की पढमावत। ये रचनाएँ अवघी में ही रची गई हैं।

७. **बधेलीबोली-** रीवां क्षेत्र में कमी बघेल राजाओं का साम्राज्य रहा था । इसलिए इसे बघेल खण्ड के नाम से जानते है और यहाँ बोले जाने वाली बोली को बघेली कहते हैं । अर्धमागही अपभ्रश की पूर्वी हिन्दी से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। यह रीवा सतना मेडए नागौद व जबलपुर में बोली जाती है । कुछ भाषा वैज्ञानिक इसे अवधी की एक उपबोली मानते हैं ।

८. **छत्तीसगढ़ी -** मध्यप्रदेश का कुछ हिस्सा छत्तीसगढ़ कहलाता है । इसे अलग राज्य का दर्जा भी मिल गया है। यह बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग, काकेर एवं नंदगाँव के आस-पास बोली जाती है । छत्तीसगढ़ का लोकसाहित्य अपने आस-पास के अंचल में ही प्रचलित है । इसका कोई विशिष्ट साहित्य उपलका नहीं है।

९. **मारवाड़ी-**(पश्चिमी राजस्थानी) राजस्थान प्रदेश के पश्चिम क्षेत्र में मारवाड़ी के नाम से बोली जाती है । जैसे- जोधपुर, फलोदी, जैसलमेर, बीकानेर,नागौर, पाली, सिरोही, अजमेर व किशनगढ़ के कुछ हिस्से तक यह बोली जाती है। लोकसाहित्य में मीरा के पद तथा रासो साहित्य (हिंगल भाषा में) पाया जाता है।

10. **जयपुरी -**(इंडाडी) राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, टोंक, डिग्गी, मालपुरा, किशनगढ़ आदि में इसे ढूंढाड़ी कहते हैं। इसकी एक शाखा हाड़ौती के नाम से जानी जाती है, जोझालावाड़ कोटा बाँरा (हाड़ौती थोत्र) में बोली जाती है । इसमें लोक साहित्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है।

११. **मेवाती-**उत्तरी राजस्थान में मेव जाति के इलाके में यह प्रतिनिधि बोली है । इस प्रदेश को मेवात धोत्र मी कहते हैं । इसका विस्तार अलवर, भरतपुर. गुडगाँव व करनाल आदि में हैं । मेवात प्रदेश की बोली होने के कारण इसे मेवाती कहते हैं । इसकी एक मिनित बोली भी है जिसे अहीरवाटी मी कहते हैं।

१२. **मालवी-** राजस्थान के दक्षिण भाग मालवा प्रदेश में यह मालवी के नाम से जानी जाती है । इसका क्षेत्र उदयपुर चित्तौड़गढ़ मध्यप्रदेश की सीमा से लगे इन्दौर, रतलाम, भोपाल, देवास होशंगाबाद तथा उसके आस-पास का क्षेत्र है। शौरसेनी अपनश से विकसित इस बोली का लोक साहित्य पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है ।

१३. **भोजपुरी -** बिहार राज्य के भोजपुर क्षेत्र के आधार पर इस बोली का नामकरण किया गया । इसका विकसित रूप बनारस शाहाबाद, आजमगढ़, गोरखपुर, बलिया, मिर्जापुर, जौनपुर, चम्पारण व सारण के आस-पास का क्षेत्र है। इसका मुख्यतः लोक साहित्य मिलता है किन्तु हिन्दी जगत् के सितारे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रेमचन्द्र व जयशंकर प्रसाद इसी क्षेत्र के रहने वाले थे ।

१४. **मगही-** बिहार के मगध प्रदेश की बोली होने के कारण इसका नाम मगही है । मागही अपभ्रंश की यह विकसित बोली है । यह पटना भागलपुर हजारीबाग गया पलामू के आस-पास बोली जाती है । इस में लोक साहित्य बहुत लिखा गया है ।

१५. **मैथिली** यह मागधी अपञ्चश की विकसित बोली है । इस का क्षेत्र मिथला प्रदेश होने के कारण इसे मैथिली कहा गया । यह दरमंगा, पूर्णिया, मुंगेर व मुजफ्फरपुर में बोली जाती है। यहाँ का साहित्य बहुत

सम्पन्न है । यह वाणी मधुरता के कारण बहुत मीठी है । विद्यापति जैसे कवि यहाँ के रससिद्ध कवि थे । गोविन्ददास, हरिमोहन झा तथा रणजीत लाल इसके प्रसिदशा साहित्यकार रहे हैं।

१६. **पश्चिमी पहाड़ी-** यह शौरसेनी अपभ्रंश की विकसित बोली है । यह हिमाचल प्रदेश में शिमला मण्डी, धर्मशाला व अम्बाला के आस-पास के क्षोत्र में बोली जाती है ।

१७. **मध्यवर्ती पहाडी (गढवाली कुमाऊँनी)**- इस बोली का धोत्र गडवाल प्रदेश है। यह गढ़वाल व कुमाऊँ में बोली जाती है । छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत इसी क्षेत्र के हैं । मध्यवर्ती पहाड़ी धोत्र की बोली होने के कारण इसे मध्यवर्ती पहाड़ी के नाम से जाना जाता है। यह शौरसेनी अपभ्रश से विकसित हुई है। उत्तरांचल का कुमाऊँ क्षेत्र कुमाऊँनी बोली का धोत्र है। नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत में यह बोली जाती है।

५. हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रयोजन

साहित्य के इतिहास लेखन का मूल प्रयोजन साहित्य की प्रवृत्तियों एवं उसकी उपलकियों को जनता तक पहुँचाता है। उसके आन्तरिक और बाह्य संघर्ष की गाथा को सरल व सुबोध मागा में वर्णित करना है । साहित्य की प्रेरक शक्तियों के साथ आन्तरिक माय सामन्जस्य बिठाना है तथा जीवन को गति प्रदान करने वाले साहित्य की समाज में क्या भूमिका है. उसे बतलाता एवं राजनीतिक सामाजिक व सास्कृतिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना साहित्य इतिहास का प्रयोजन होता है । इतिहास शब्द इति और हास' से बना है, जिसका अर्थ है "ऐसा-ही-शा' यदि साहित्य के इतिहास को साहित्यिक दिग्दर्शन कडा जाए तो अनुचित नहीं होगा क्योंकि यह वर्तमान और अतीत के फों को उजागर करता है और हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी का मूल उदगम और उसके कनिक विकास को समझाता है । साहित्य का इतिहास अपने विकास क्रम का अध्ययन करता है और समाज का ध्यान केन्द्रित करता है । साहित्य का कालक्रम नामकरण उसमें योगदान देने वाले कवि- लेखकों का सहयोग व तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन करता है. जो समाज के लिए अतिआवश्यक है, क्योंकि उसके द्वारा विकास क्रम के सोपानों और स्तरों को आसानी से समझ सकते हैं । तत्कालीन कवियों की काव्य कला व माषा शिल्प से परिचय होता है । जो आगामी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक है । अतः साहित्य का इतिहास कवि एवं लेखकों की काल सम्बंधी विवेचना करते हुए उनकी कृतियों का भी विश्लेषण करता है । अतः साहित्य के इतिहास का मूल प्रयोजन विगत युगों की साहित्यिक प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन करना है. क्योंकि साहित्य का इतिहास मानव की चित्तवृत्तियों का चित्रण तथा समसामयिक परिवेश का विवरण प्रस्तुत करता है । जिस प्रकार समाज साहित्य को प्रमावित करता है । ठीक उसी प्रकार साहित्य मी समाज को प्रभावित करता है । इसीलिए साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है ।

६. हिन्दी साहित्य के इतिहास के सोत

इतिहास सदैव साक्ष्य की खोज करता है वह प्रमाणित साक्ष्य प्राप्त होने पर आगे बढ़ता है । यही उसकी आचार सामग्री है। यह साक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। पहला अन्तःसाक्ष्य दूसरा बाड्य साक्ष्य । अन्त साक्ष्य के अन्तर्गत उपलब्ा सामग्री में आधारभूत कृतियों एवं ग्रथों कवि एवं लेखकों की फुटकर प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाएँ होती है । घाइय साक्ष्य के अन्तर्गत ताम्रपन्नावली, शिलालेख वंशावलियों, जनश्रुतियाँ कहावते. ख्वात एवं वधनिकाएँ जोसी सामग्री होती है । जो तत्कालीन युग को परिलक्षित करती है। हिन्दी साहित्य में भी अंत और घाइय स्रोतों के माध्यम से इतिहास लेखन प्रारम्भ हुआ । जिसमें गोकुलनाथ द्वारा रचित चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दो सौ घावन वैष्णवन की वार्ताएं नाभादास कृत भक्तमाल छुवदास कृत भक्त नामावली एवं सन्तवाण संग्रह,निखारी दास कृत "काध्य निर्णय" तथा अन्य कृतियाँ कविनामावली. मोढतरंगिनी श्रृंगार संग्रह

हरिश्चन्द्र कृत सुन्दरी तिलक', मातादीन मित्र का "कवित्त रत्नाकर' में कई कवियों की कविताओं का परिचय मिलता है । इस प्रकार अन्तः साक्ष्य प्रकाशित रचनाओं एवं अप्रकाशित रचनाओं का संग्रह होता है । बाइय साक्ष्य के माध्यम से इतिहासकार अपनी पैनी दृष्टि से तत्कालीन परिस्थितियों की खोज कर लेता है । कर्नल टॉड द्वारा लिखा गया राजस्थान का इतिहास में चारण कवियों का तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में अन्नात कवियों एवं लेखकों का परिचय मिलता है । मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रंथों की खोज की तथा हिन्दुओं के धार्मिक दर्शन के सिद्धांतों को निरूपित करते हुए उस समय के कवि लेखकों एवं आचार्यो के विचारों की भी समीक्षा की है । जनश्रुतियों से तात्पर्य है जनता में प्रचलित बातें जिसमें सत्य का अंश छिपा रहता है । यह कई वर्षों तक लोगों की जीम पर रहती है. किन्तु धीरे-धीरे लिपिबद्ध हो जाती है। उनमें कवि की जीवन सम्बन्धी घटनाओं का योग होता है तथा प्राधीन ऐतिहासिक शिलालेखों के आधार पर उस युग का चित्रण मिलता है । इस प्रकार की आधारभूत सामग्री के मूल स्रोतों के माध्यम से ही इतिहास लेखन होता है । अतः यह लिपि बद्ध होकर एक ऐतिहासिक ग्रंश बन जाता है ।

७. हिन्दी साहित्य इतिहास के लेखान की परम्परा

हिन्दी साहित्य की लेखन सामग्री प्राप्ति के पश्चात् विद्वानों ने इतिहास लेखन प्रारम्म किया। हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास लेखन का श्रेय फ्रेंच भाषा के विद्वान् को जाता है । इसका नाम गार्सा द तासी था । इनका "इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐंदुई-ए-ऐन्दुस्तानी" नाम से १८३९ में प्रथम माग प्रकशित हुआ तथा द्वितीय भाग १८४७ में प्रकाशित हुआ । इसे अंग्रेजी के वर्णा के क्रमानुसार लिखा गया था । यह हिन्दी और उर्दू के लगभग ७० कवियों का संग्रह है। तासी ने प्रथम प्रयास में कवियों की जीवनी और उनके द्वारा रचित रचनाओं का उपलहा विवरण प्रस्तुत किया । यह नई दिशा की और प्रथम कदम था । इनका प्रारम्भिक प्रयास प्रशंसनीय रहा है । यह गौरवपूर्ण गाथा हिन्दी के इतिहास लेखन की परम्परा में नींय का पत्थर थी । इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए शिवसिह सेंगर ने "शिवसिड सरोज" के नाम से १८८३ में दूसरा इतिहास लिखा । इसमें लगभग एक हजार कवियों का वर्णन है । इसमें कवियों की जीवनी. जीवन सम्यन्त्री घटनाएँ चरित्रों एवं उनकी कविताओं के संग्रह को संगृहीत किया गया है । हिन्दी इतिहास लेखन का तीसरा प्रयास डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने "द मॉडर्न वर्नक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' के नाम से लिखा । यह एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल" से १९८८ में प्रकाशित हुआ । इन्होंने इस इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से व्यवस्थित किया । इस प्रकार का इतिहास पहली बार लिखा गया किन्तु कालक्रमबद्ध इतिहास लेखन की परम्परा की शुरुआत मिनबन्धुओं द्वारा की गई । यह ग्रंथ "मित्रवधु विनोद' के नाम से १९१३ में प्रकाशित हुआ । इसमें काल विभाजन भी किया गया। इसी समय हिन्दी साहित्य जगत् में एक देदीप्यमान नक्षत्र का अवतरण हुा । इनका नाम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल था। इन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास को सुव्यवस्थित कालक्रमानुसार लिखा । इस इतिहास को हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक प्रारम्भिक ग्रंथ माना जाता है ।

सन्दर्भ ग्रंथ

१. संग्रहीत प्रति". मूल से २१ जनवरी २०१६ को पुरालेखित. अभिगमन तिथि ४ अक्तूबर २०१९
२. शर्मा, मगनलाल अवं अन्य ''हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास'' माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर